International Research Journal of Human Resource and Social Sciences
ISSN(O): (2349-4085) ISSN(P): (2394-4218)
Impact Factor 6.414 Volume 5, Issue 6, June 2018
Website- www.aarf.asia, Email : editoraarf@gmail.com

मध्यकालीन युग और हिन्दू मुस्लिम एकता

डा. अनिता जून
एसोसिएट प्रोफसर (इतिहास)
राजकीय महिला महाविद्यालय, करनाल

भक्ति की धारा संहिताओं, ब्राह्मण-ग्रंथो और उपनिषदों तथा पुराणों से होती हुई गीता में आकर संपुष्ट हुई। वैष्णव, भागवत, शैव, पाशुपत, लिंगायत बौद्व एवं जैन मतों एवं धर्मों ने भक्ति आंदोलन के लिए सशक्त भूमिका प्रस्तुत की। डा. सुमन शर्मा ने भक्ति के विकास के तीन काल माने जाते हैं-

प्रथम काल का प्रारंभ ग्रंथो में होता है। 'गीता' तक आते-जाते भक्ति के द्वितीय काल का आरंभ होने लगता है। ये आलवार सन्त तमिलनाडू में भक्ति-प्रचार कर रहे थे। छठी से नवीं शताब्दी तक जिस साहित्य का निर्माण तमिल में हुआ था, वह पूर्ण रूप से भक्ति-साहित्य था। वैष्णव आचार्यों को दक्षिण भारत में आलवार कहा जाता था। आलवारों ने संस्कृत के स्थान पर तमिल भाषा में अपने सिद्धान्तों का प्रचार किया। जिससे इन्होंने जनता के ह्रदय में अपना स्थान बना लिया। आलावरों के लगभग चार हज़ार गीत -दिव्य प्रबन्धम' में संग्रहीत हैं। आलवारों की संख्या तो बहुत अधिक थी पर उनमें बारह प्रमुख माने जाते हैं। इनमें अन्दाल नाम की एक महिना भी थी। आलवारों के बाद दक्षिण के आचार्यों में यामुनाचार्य, रामानुजचार्य, निम्बर्काचार्य, मध्वाचार्य, विष्णु स्वामी आदि बहुत प्रसिद्ध हुए। आलावार बहुत अधिक विद्वान नहीं थे। वे केवल भक्ति रस में लीन रहा करते थे, और पावन भक्ति के गीत गाया करते थे किन्तु आचार्यों ने भक्ति और कर्म में समन्वय स्थपित किया। डा. सुमन शर्मा ने लिखा है-'सांरांश यह है कि आलवारों में ह्रदय पद प्रबलता थी और आचार्यों में बुद्धि पक्ष की। वैष्णव धर्म के आचार्यों द्वारा धार्मिक सम्प्रदायों तथा सिद्धान्तों का प्रचार उत्तरी

© Associated Asia Research Foundation (AARF)
A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International e-Journal - Included in the International Serial Directories.

भारत में भी किया गया। डा. ताराचंद का भी यही मत है। अन्य विद्वानों की भी यही धारणा है।

भक्ति के विकास का तीसरा काल 1400 ई. से माना जा सकता है। यहाँ भक्ति एक सशक्त आंदोलन के रूप में उभर कर सामने आयी।

भक्तिकालीन युग राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, सासस्कृतिक एवं आर्थि दृष्टि से बदल रहा था। अतः जनसमाज की मानसिकता में बदलाव आना स्वभाविक था। तत्युगीन समाज कई वर्गों में विभाजित था। प्रथम वर्ग में बहुसंख्यक हिन्दु आते थे, जो वैष्णव धर्म की अनेक शाखा, प्रशाखओं में बंटे हुए थे। दूसरा वर्ग मुसलमानों का था, जिसे धर्म पालन की अपेक्षाकृत अधिक सुविधाएँ प्राप्त थी और धर्म-प्रचार का काम जिसे मुल्ला, मौलवियों के हाथों सौंप दिया था। तीसरा अशिक्षित जनसमूह का वर्ग था जो अंधविश्वासों एवं रूढ़िवादी था। इस वर्ग के लोगों की भक्ति-भावना में धर्म के बाह्यांगो का ही प्रसार था। ये लोग जादू टोने, प्रेत, तीर्थ आदि में विश्वास करते हुए रूढ़ि परम्पराओं तथा रीतियों का पालन करने में ही अपने जीवन की सार्थकता समझते थे। चौथे वर्ग में कट्टरता और रूढ़िवाद से विरत एकेश्वरवादी निर्गुण संतो की गणना की सकती है। कबीर, नानक, दादू आदि जिसके मुख्य साधक थे। ईश्वर की एकता का निरूपण बाह्याचारों का खंडन ही इनके जीवन का लक्ष्य था। एक वर्ग मुसलमान, सूफियों का भी था, जो निर्गुणोपासना तथा एकेश्वरवाद में विश्वास करता था। प्रो. बी. एन.लुनिया ने लिखा है-भक्ति-आंदोलन युगीन संत समाज सुधारक थे। इन्में कुछ रहस्यवादी भी थे। इनके जीवन की कुछ प्रमुख विशेषताएँ थी। इन्हें अपना कोई स्वतंत्र पंथ चलाने की इच्छा नहीं थी, न किसी धार्मिक मत का प्रवर्तन ही इन्होंने करना चाहा। सभी सम्प्रदाय विशेष को बन्धनों एवं दासत्व से भी सर्वथा मुक्त थे। पवित्र धार्मिक पुस्तकों एवं अनुष्ठानों के प्रति इनमें अंध श्रद्धा भी नहीं थी। ये सभी संत एकेश्वरवादी थे। डा. ईश्वरी प्रसाद एकेश्वरवाद के सिद्धान्त की मुसलमानों की देन मानते हैं।यद्यपि यह हिन्दु अपरिमित नहीं था। लेकिन इस्लाम में इस सिद्धान्त की दृढ़ स्वीकृति ने नामदेव, रामानंद, कबीर तथा नानक जैसे गुरूओं पर गहरा प्रभाव डाला जिसमें हिन्दू एवं मुस्लिम प्रभावों का सुखद मिश्रण दिखाई देता है। इल्लाम में सादगी और एकेश्वरवाद के प्रति दृढ़ता देखकर ये सभी संत बहुत प्रभवित हुए और मूर्ति पूजा तथा जाति प्रथा का खंडन करते हुए इन्होंने

बताया कि धर्म निरर्थक धार्मिक विधी विधानों में नहीं, अपितु ईश्वर के प्रति सच्ची भक्ति में सन्नहित है।" प्रो. बी.एन. लुनिया की यही मान्यता है। इन संतो की एक विशेषता थी। इन्होंने जनता का कनता की भाषा में अपने सिद्धान्त समझाये जिसका सर्वसाधारण पर उनका गहरा प्रभाव पड़ा।

हिन्दु मुस्लिम एकता– भारतीय जनता एक वर्ग ऐसा था जो वैदिक अनुष्ठानो और आचारों में विश्वास नहीं करता था, जिसके भीतर बहुत दूर तक बृद्ध की प्रेरणा काम कर रही थी, जिसके सरहपा, नहपा आदि बौद्ध सिद्धों के इस उपदेश को अपना लिया था कि यज्ञ झूठे हैं, पंडितों का आदर करने में कोई पुण्य नहीं है, न एकादशी और मंगल को व्रत रखने में आत्मा का कल्याण होता है, यह विचारधारा अहिंसा को मानती थी और आत्मचिंतन की प्रक्रिया में विश्वास रखती थी और प्रतिमा–पूजन तथा तीर्थ–यात्रा के विरूद्ध थी। सूफियों के उपदेश सबसे अधिक इन्हीं लोगों को पसंद आये और ये ही लोग इस्लाम तथा हिन्दू के बीच प्रथम सेतु हुए। हिन्दू से मुसलमान होने वालों में सबसे अधिक संख्या इन्हीं लोगो की थी और इसी वर्ग के लोग हिन्दू रहकर भी इस्लाम से विशेषतः उनके सूफी सम्प्रदाय से प्यार करने लगे।"

सूफी लोग नमाज़, रोजा के विरोधी थे तथा मुक्त चिंतक थे। उनका उद्देश्य लोगों को डाल से उतारकर मूल की ओर ले जाना था। वे मनुष्यों को यह शिक्षा देते थे कि धर्म के बाहरी अनुष्ठान में फँसकर तुम असली धर्म से दूर हो रहे हो। सच्चा धर्म अलग–अलग डालों पर बैठकर कोलाहल मचाने में नहीं, अपितु मूल पर पहुँचकर ज्ञान हो जाने में है। धर्म कोलाहल नहीं, शांति है, धर्म विवाद नहीं नीरवता है। धर्म युद्ध नहीं, मैत्री और प्रेम है।

ईरानी सूफी साधना भारतीय वेदान्त के प्रभाव में पल्लवित हुई थी, अतएव जब ये लोग भारत में आये थे, उन्हें अपने चिंतन को पोषित करने के लिए तैयार ज़मीन मिल गयी। यह नया धर्म बहुत से भारत वासियों को बहुत पसन्द आया। राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर ने लिखा है –"यह उन्हें भी रूचा, जो वैदिक धर्म के अनुष्ठानों से विरक्त थे और उन्हें भी जो सामाजिक धरातल पर हिन्दूओं और मुसलमानों के लिए कोई सम्मिलित राह निकालना चाहते थे। यह रास्ता हिन्दू मुसलमान एकता का था। भारत में इस आंदोलन के सबसे बड़े नेता कबीरदास थे।

डा. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है–"जो लोग हिन्दू मुस्लिम एकता के व्रत में दीक्षित हैं, वे भी कबीरदास को अपना मार्गदर्शक मानते हैं। राम रहीम और केशव करीम की जो एकता स्वयंसिद्ध है, उसे भी सम्प्रदाय बृद्धि से विकृत मस्तिष्क वाले लोग नहीं समझ पाते। कबीरदास से अधिक ज़ोरदार शब्दों में इस एकता का प्रतिपादन किसी ने नहीं किया। कबीर खुलें शब्दों में दोनों धर्मो के अनुयायियों को समझाते हैं, और दोनो धर्मो की एकता पर बल देते है। डा. हज़ारी प्रसाद द्विवेदी की दृष्टि में कबीर ने हिन्दू–मुस्लिम वैमन्स्य के रोग का एकमात्र निदान भगवत् विश्वास में माना था। अपथ्य थे बाह्आचारों को धर्म समझाना, व्यर्थ कुलाभिमान, अकारण ऊँच–नीच का भाव। कबीरदास की ये दोनों व्यवस्थाएँ गलत नहीं थी। वे जानते थे कि अगर किसी दिन हिन्दुओं और मुसलमानों में एकता स्थापित हुई तो इसी रास्ते से होगी।

कबीर के साथ–साथ संतो का एक बहुत बड़ा वर्ग हिन्दू मुस्लिम एकता का समर्थक था। दादू, चैतन्य, रामदास, पीपा, सेना तथा अन्य दूसरे संतो ने हिन्दू मुसलमानों में एकता स्थापित करके आदि दोनों धर्मों के बीच की खाई को पाटने का प्रयास किया।

मुगलों से पूर्व जो यवन बादशाह भारत में हुए उनका उद्देश्य इस्लाम की नींव पर राज्य की स्थापना करना था, अतएव प्रतिक्रिया स्वरूप भक्तिवाद का विशाल आंदोलन उठ खड़ा हुआ जो अपने पूर्ववर्ती बौद्ध आंदोलन के परिणाम स्वरूप संतो और कवियों का एक ऐसा वर्ग उठ खड़ा हुआ जो हिन्दू और मुलसमानों के बीच की दूरी को मिटाकर उनमें एकता स्थापित करने का पक्षधर था। संतो ने इन दोनों धर्मों की मान्यताओं तथा पूजा–पद्वतियों की आलोचना करके दोनों को ही चेतावनी दी और दोनों में एकता स्थापित करने की चेष्टा की, परन्तु उन्हें सफलता नहीं मिली। इस युग के मुख्य धार्मिक सम्प्रदायों और प्रवृतियों जैसे भक्ति मार्ग प्रचारक, सूफी और सिख सम्प्रदाय ने हिन्दू और मुसलमानों को निकट लाने में सहयोग दिया। मुग़लकाल में हिन्दुओं और मुसलमानों के संबंध अच्छे रहे थे। हिन्दु मुसलमान धर्मों में एकता स्थापित करने वाला सबसे बड़ा नेता बादशाह अकबर था, किन्तु जिन गुणों के कारण अकबर पर हिन्दुओं की श्रद्धा बढ़ी, उन्हीं गुणों के कारण मुसलमान उसके खिलाफ हो गये।

राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर ने लिखा है–"क्रांतिकारी नेता का जो हाल होता है अकबर का भी वही हाल हुआ। उसका साथ न तो उच्च वर्ग के हिन्दुओं ने दिया। मुसलमानों ने कट्टर मुसलमान उसे काफ़िर समझते रहे और ऊँचे तबके के हिन्दुओं ने मुसलमान समझा।

सम्राट औरगंज़ेब की धार्मिक सहिष्णुता की नीति से पुनः हिन्दु मुसलमानों में वैमनस्य बढ़ा दिया। वस्तुतः अगर बादशाह अकबर की नीति का अनुसरण उसके उत्तराधिकारी करते तो आज भारत का इतिहास कुछ और ही होता।

1. डा. सुमन शर्मा, मध्यकालीन भक्ति आंदोलन की सामाजिक संचेतना, प्रथम संस्करण 1974, वाराणसी पृष्ठ 8–11 ।
2. (अ) 1. डा. सुमन शर्मा, मध्यकालीन भक्ति आंदोलन की सामाजिक संचेतना,

   प्रथम संस्करण 1974, वाराणसी पृष्ठ 38 ।

   (ब) बलदेव उपाध्याय, धर्म और दर्शन, पृष्ठ 38।
3. (अ) डा. सुमन शर्मा, मध्यकालीन भक्ति आंदोलन की सामाजिक संचेतना, प्रथम

   संस्करण 1974, वाराणसी पृष्ठ 8 ।

   (ब) आचार्य परशुराम चजुर्वेदी, मध्यकालीन प्रेम साधना, प्रथम संस्करण 1952, इलाहबाद, पृष्ठ 1 ।
4. डा. सुमन शर्मा, मध्यकालीन भक्ति आंदोलन की सामाजिक संचेतना, प्रथम संस्करण 1974, वाराणसी पृष्ठ 11 ।
5. From the South the impulse was transmitted to the north through Ramanand a pupil of Ramanuja.
   Tracehand-Influence of Islam an Indian Culture, Second Edition, Allahbad, page 67.
6. जगन्नाथ शर्मा, उदासीन सम्प्रदाय कंदिली कवि और उनका साहित्य, प्रथम संस्करण, 1981 ई., साहिब (गाजियाबाद उ.प्र.) पृष्ठ 24 ।
7. सभी संतो के सन्दर्भ में यह कहानी ठीक नहीं है। अपने सिद्धान्त के प्रसार के लिए कबीर, दादू नानक आदि ने क्रमशः कबीर–पंथ एवं सिख पंथ चलाये थे।
8. Prof. B.N. Luniya, Life and Culture in Medieval India, First Edition 1978, Indore, Page 417

9. Dr. Ishwari Parsad, A Short History of Muslim Rule in India Edition 1939, Allahbad, Page 198

10. Prof. B.N. Luniya, Life and Culture in Medieval India, First Edition 1978, Indore, Page 417

11. रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, तृतीय संस्करण 1962 ई. पटना, पृष्ठ 324 ।

12. रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, तृतीय संस्करण 1962 ई. पटना, पृष्ठ 328 ।

13. डा. हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर, द्वितीय संस्करण 1973, दिल्ली पृष्ठ 224।

18. डा. सुदर्शन सिंह मजीठिया, संत साहित्य प्रथम संस्करण, 1962 ई. दिल्ली पृष्ठ 361

19. प्रो. बी.एन. लुनिया, लाईफ एंड कल्चर इन मिडिवल इंडिया, प्रथम संस्करण 1978, इन्दौर, पृष्ठ 452।

20. रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, तृतीय संस्करण, 1962 ई. पटना

पृष्ठ 388 ।